Chapter तेइस

शिशुमार ग्रह-मण्डल

इस अध्याय में बताया गया है कि किस प्रकार सभी ग्रह ध्रुवतारा अथवा ध्रुवलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं। इसमें इसका भी वर्णन है कि ये सभी ग्रह मण्डल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के बाह्यशरीर के अन्य विस्तार *शिशुमार* के रूप में हैं। इस ब्रह्माण्ड के भीतर भगवान् विष्णु का आवास ध्रुवलोक, सप्तनक्षत्रों से १३,००,००० योजन की दूरी पर स्थित है। ध्रुवलोक ग्रहमंडल में अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप तथा धर्म नामक नक्षत्र सम्मिलित हैं और ये सभी नक्षत्र धुव्र तारा पर रहने वाले परम भक्त ध्रुव को आदर की दृष्टि से देखते हैं। सभी नक्षत्र काल द्वारा प्रेरित होकर ध्रुवलोक के चारों ओर इसी प्रकार चक्कर लगाते हैं, जिस प्रकार एक मध्यवर्ती धुरी में जुते हुए बैल। जो भगवान् के विश्वरूप अर्थात् *विराट पुरुष* की आराधना करते हैं, वे इस समग्र चक्कर लगाते हुए ग्रह मंडल को शिशुमार नामक जन्तु मानते हैं। यह काल्पनिक शिशुमार ईश्वर का अन्य रूप है। इसका शिर नीचे की ओर है और इसका शरीर कुण्डलीबद्ध सर्प की भाँति प्रतीत होता है। इसकी पूँछ के सिरे पर ध्रुवलोक, पूँछ के मध्य में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र तथा धर्म और पूँछ के ऊपरी भाग में धाता तथा विधाता स्थित हैं। इसके कटि भाग में सात महर्षि हैं। शिशुमार का पूरा शरीर दाई ओर है और यह नक्षत्रों की कुण्डली के समान लगता है। इस कुण्डली के दाईं ओर अभिजित् से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त चौदह प्रमुख नक्षत्र हैं। बाईं ओर भी पुष्य से उत्तराषाढ़ा पर्यन्त चौदह नक्षत्र हैं। पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र शिशुमार के दाहिने तथा बाएँ कूल्हे पर और आर्द्रा तथा अश्लेषा नक्षत्र दाहिने तथा बाएँ पैरों पर अवस्थित हैं। वैदिक ज्योतिर्विदों की गणनाओं के अनुसार अन्य नक्षत्र भी शिशुमार चक्र की विभिन्न दिशाओं में स्थित हैं। योगीजन ध्यानावस्थित होने के लिए शिशुमार की आराधना करते हैं। इसी को *कुंडलिनी चक्र* भी कहा जाता है।

श्रीशुक उवाच

अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः. ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुक देव गोस्वामी ने कहा; अथ—तदनन्तर; तस्मात्—सप्त नक्षत्रों के गोलक से; परतः—उससे परे; त्रयोदश-लक्ष-योजन-अन्तरतः—और १३,००,००० योजन; यत्—जो; तत्—वह; विष्णोः परमम् पदम्—भगवान् विष्णु का परम धाम, अथवा भगवान् विष्णु के चरणकमल; अभिवदन्ति—ऋग्वेद के मंत्र स्तुति करते हैं; यत्र—जिस पर; ह—निस्सन्देह; महा-भागवतः—परमभक्त; ध्रुवः—महाराज ध्रुव; औत्तानपादिः—महाराज उत्तानपाद के पुत्र; अग्निना—अग्निदेव द्वारा; इन्द्रेण—स्वर्गलोक के राजा इन्द्र द्वारा; प्रजापतिना—प्रजापति द्वारा; कश्यपेन—कश्यप द्वारा; धर्मेण—धर्मराज द्वारा; च—भी; समकाल-युग्भिः—एक ही समय संलग्न; स-बहु-मानम्—सदैव आदरपूर्वक; दक्षिणतः—दाहिनी ओर; क्रियमाणः—चक्कर लगाया जाकर; इदानीम्—इस समय; अपि—भी; कल्प-जीविनाम्—कल्पान्त तक विद्यमान जीवात्माओं का; आजीव्यः—आजीविका, प्राणाधार; उपास्ते—बना रहता है; तस्य—उसका; इह—यहाँ; अनुभावः—सेवा कार्य की महानता; उपवर्णितः—पहले ही वर्णित (श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में)।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा—हे राजन्, सप्तर्षि-मण्डल से १३,००,००० योजन (१०,०४,००,०००) ऊपर भगवान् विष्णु का धाम कहा जाता है। वहाँ पर अब भी महाराज उत्तानपाद के पुत्र, परम भक्त महाराज ध्रुव वास करते हैं, जो इस सृष्टि के अन्त तक रहने वाले समस्त जीवात्माओं के प्राणाधार हैं। वहाँ पर इन्द्र, अग्नि, प्रजापति, कश्यप तथा धर्म सभी समवेत होकर उनका आदर करते हैं और नमस्कार करते हैं। वे उनके दाईं ओर रह कर उनकी प्रदक्षिणा करते हैं। मैं पहले ही महाराज ध्रुव के यशस्वी कार्यों का वर्णन (*श्रीमद्भागवत* के चतुर्थ स्कन्ध में) कर चूका हूँ।

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते. ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सः—ध्रुव महाराज का वह लोक; हि—निस्सन्देह; सर्वेषाम्—सभी; ज्योतिः-गणानाम्—ज्योतिर्गण; ग्रह-नक्षत्र-आदीनाम्—ग्रह नक्षत्र इत्यादि का; अनिमिषेण—न विश्राम लेने वाला; अव्यक्त—अवर्णनीय; रंहसा—जिसका बल; भगवता—सर्व शक्तिमान; कालेन—काल द्वारा; भ्राम्यमाणानाम्—घुमाया जाकर; स्थाणुः इव—ठूँठ की भाँति; अवष्टम्भः—आधार-स्तम्भ; ईश्वरेण—श्रीभगवान् की इच्छा से; विहितः—स्थापित; शश्वत्—अनवरत; अवभासते—प्रकाशित होता रहता है।

श्रीभगवान् की परम इच्छा से स्थापित ध्रुव्र महाराज का लोक ध्रुवलोक समस्त नक्षत्रों तथा ग्रहों के मध्यवर्ती-स्तम्भ के रूप में निरन्तर प्रकाशमान रहता है। सदा जागते रहने वाला अदृश्य सर्वशक्तिमान काल इन ज्योतिर्गणों को अहर्निश ध्रुवतारे के चारों ओर घुमाता रहता है।

तात्पर्य : यहाँ पर यह स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है कि सभी ज्योतिर्गण, नक्षत्र तथा ग्रह परम काल के प्रभाव से चक्कर लगाते रहते हैं। यह काल श्रीभगवान् की दूसरी विशेषता है। प्रत्येक प्राणी काल के

वशीभूत है, किन्तु श्रीभगवान् इतने सदय हैं और अपने भक्त महाराज ध्रुव को इतना चाहते हैं कि उन्होंने समस्त ज्योतिर्पिण्डों को ध्रुवलोक के अधीन कर रखा है और ऐसी व्यवस्था की है कि काल उनके अधीन अथवा उनके सहयोग से कार्य करता है। वास्तव में प्रत्येक कार्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की इच्छा और निर्देश से चालित है, किन्तु अपने भक्त ध्रुव को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्राणी बनाने के उद्देश्य से ही काल के कार्यकलापों को भी उनके अधीन कर रखा है।

यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति. ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; मेढीस्तम्भे—मध्यवर्ती-स्तम्भ में; आक्रमण-पशवः—कोल्हू चलाने वाले बैल; संयोजिताः—जोते जाकर; त्रिभिः त्रिभिः—तीन तीन करके; सवनैः—गतियों के द्वारा; यथा-स्थानम्—अपने-अपने स्थानों पर; मण्डलानि—मंडल, चक्कर; चरन्ति—पार करते हैं; एवम्—उसी प्रकार; भ-गणाः—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति इत्यादि ज्योतिर्गण; ग्रह-आदयः—विभिन्न ग्रह; एतस्मिन्—इसमें; अन्तः-बहिः-योगेन—भीतरी अथवा बाहरी चक्कर के साथ सम्बन्ध होने से; काल-चक्रे—अनन्त कालचक्र में; आयोजिताः—बँधा हुआ; ध्रुवम्—ध्रुवलोक; एव—निश्चय ही; अवलम्ब्य—आधार बनाकर; वायुना—वायु द्वारा; उदीर्यमाणाः—चक्राकार घुमाये जाकर; आ-कल्प-अन्तम्—कल्प के अन्त तक; परिचङ्क्रमन्ति—चारों ओर चक्कर लगाता है; नभसि—आकाश में; यथा—सदृश; मेघाः—घने बादल; श्येन-आदयः—बाज जैसे पक्षी; वायु-वशाः—वायु के द्वारा चालित; कर्म-सारथयः—अपने पूर्व कर्म रूपी सारथी; परिवर्तन्ते—चारों ओर घूमते हैं; एवम्—इस प्रकार; ज्योतिः-गणाः—आकाश के ग्रह, नक्षत्र ज्योति-पिण्ड; प्रकृति—प्राकृतिक; पुरुष—तथा परम-पुरुष, कृष्ण का; संयोग-अनुगृहीताः—संयुक्त प्रयत्नों के द्वारा ग्रहण किया हुआ; कर्म-निर्मित—कर्मों के द्वारा उत्पन्न; गतयः—जिसकी गतियाँ; भुवि—भूमि पर; न—नहीं; पतन्ति—गिरते हैं।

यदि बैलों को एकसाथ नाधकर उन्हें एक मध्यवर्ती आधार-स्तम्भ से बाँधकर भूसे पर घुमाया जाता है, तो वे अपनी स्थिति से हटे बिना चक्कर लगाते रहते हैं—पहला बैल स्तम्भ के निकट रहता है, दूसरा बीच में और तीसरा बाहर की ओर। इसी प्रकार सभी ग्रह तथा सैकड़ों हजारों नक्षत्र भी ध्रुवतारे के चारों ओर ऊपर तथा नीचे स्थित अपनी-अपनी कक्ष्याओं में घूमते रहते हैं। वे अपने पूर्वकर्मों के अनुसार श्रीभगवान् द्वारा प्रकृति-यंत्र में बाँधे जाकर वायु द्वारा ध्रुवलोक के चारों ओर घुमाये जाते हैं और इस प्रकार कल्पान्त तक घूमते रहेंगे। ये ग्रह विशाल आकाश के भीतर वायु में वैसे ही तैरते रहते हैं, जिस प्रकार हजारों टन जल से लदे बादल वायु में तैरते रहते हैं, अथवा अपने पूर्वकर्मों के कारण बड़े-बड़े बाज आकाश में ऊँचाई तक उड़ते रहते हैं और भूमि पर कभी नहीं गिरते।

तात्पर्य : इस श्लोक के विवरण के अनुसार सैकड़ों हजारों नक्षत्र तथा सूर्य, चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र जैसे बृहद् नक्षत्र न तो गुरुत्वाकर्षण के नियम द्वारा अथवा आधुनिक वैज्ञानिकों की अन्य किसी कल्पना द्वारा ही संपुंजित हैं। ये समस्त नक्षत्र एवं ग्रह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द अथवा कृष्ण के दासस्वरूप हैं और उनकी ही आज्ञा से अपने-अपने रथों में आरूढ़ होकर अपनी-अपनी कक्ष्याओं में घूमते रहते हैं। इन कक्ष्याओं की उपमा प्रकृति द्वारा नक्षत्र और लोकों के अधिपतियों को प्रदत्त यंत्रों से की गई है जो महाराज ध्रुव द्वारा शासित ध्रुवलोक के चारों ओर चक्कर लगा कर श्रीभगवान् के आदेशों का पालन करने वाले हैं। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* (५.५२) में इस प्रकार की गई है—

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां

राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः।

यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''मैं उन आदि पुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ, जिनके आदेश से ईश्वर के चक्षु रूप सूर्य भी शाश्वत काल की स्थिर कक्ष्या में घूमता है। सूर्य समस्त नक्षत्रों का राजा है और उसमें उष्मा तथा प्रकाश की असीम शक्ति है।'' *ब्रह्म-संहिता* के इस श्लोक से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सबसे बड़ा एवं सर्वशक्तिमान ग्रह सूर्य भी स्थिर कक्ष्या अथवा कालचक्र के अन्तर्गत श्रीभगवान् की आज्ञा से घूमता है। गुरुत्वाकर्षण या विज्ञानियों द्वारा बनाए गए अन्य काल्पनिक सिद्धान्तों से इसका कोई सरोकार नहीं है।

भौतिक विज्ञानी श्रीभगवान् के शासन से दूर रह कर नक्षत्रों की गति के लिए नाना प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं। जिन के अन्तर्गत वे नक्षत्रों की गति को होना मानते हैं। किन्तु श्रीभगवान् का आदेश सर्वप्रमुख शर्त है। ग्रहों के प्रमुख देवता पुरुष हैं और भगवान् भी पुरुष (पूर्ण पुरुषोत्तम) हैं। श्रीभगवान् अपने अधीन विभिन्न नामधारी देवतोओं को आदेश देते हैं कि वे उनकी परम इच्छा का पालन करें। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* से (९.१०) हुई है, जिसमें श्रीकृष्ण का वचन है—

मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥

''हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता में कार्य करती हुई सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को

उत्पन्न करती है। इसी कारण इस दृश्य जगत का बारम्बार सृजन एवं संहार होता है।''

नक्षत्रों की कक्ष्याएँ उन शरीरों के समान हैं, जिनके भीतर जीवात्मा विद्यमान है क्योंकि दोनों ही श्रीभगवान् द्वारा संचालित यंत्र हैं। जैसाकि श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (१८.६१) में कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

''हे अर्जुन, परमेश्वर प्राणीमात्र के हृदय में स्थित है। वही भौतिक-शक्ति रूपी यंत्र में आरूढ़ होकर सब जीवों को अपनी माया-शक्ति के द्वारा घुमा रहा है।'' यह यंत्र, चाहे शरीर-यंत्र, कक्ष्यायंत्र अथवा कालचक्र हो, श्रीभगवान् के ही आदेशानुसार कार्य करता है। श्रीभगवान् तथा भौतिक प्रकृति दोनों ही मिलकर न केवल इस ब्रह्माण्ड का वरन् इससे परे लाखों ब्रह्माण्डों को बनाए रखते हैं।

इस श्लोक में इस प्रश्न का भी उत्तर मिल जाता है कि नक्षत्र तथा ग्रह किस प्रकार तैर रहे हैं। गुरुत्वाकर्षण का इसमें कोई हाथ नहीं है, वरन् नक्षत्र तथा ग्रह वायु के द्वारा तैर पाते हैं। इसी कारण आकाश में बड़े-बड़े बादल और बड़े-बड़े बाज पक्षी उड़ पाते हैं। आधुनिक वायुयान, यथा ७४७ जेटयान भी इसी प्रकार कार्य करते हैं—वे वायु को नियंत्रित करके, आकाश में ऊँचाई पर तैरते हैं और नीचे गिरते को रोकते हैं। इस प्रकार से वायु का नियंत्रण पुरुष और प्रकृति के सिद्धान्तों के सहयोग के द्वारा सम्भव हो पाता है। प्रकृति और पुरुष माने जाने वाले श्रीभगवान् के सहयोग से इस ब्रह्माण्ड के सारे कार्यकलाप सुचारु रूप से चलते रहते हैं। *ब्रह्म-संहिता* (५.४४) में प्रकृति का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका

छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।

इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''बहिरंगाशक्ति माया की, जो चित् शक्ति की छाया तुल्य है, सभी लोग दुर्गा के रूप में, जो संसार के सृजन, पालन तथा संहार करने वाली शक्ति है, आराधना करते हैं। मैं उन आदि पुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ, जिनकी इच्छा से दुर्गा अपने सारे कार्य करती हैं।'' प्रकृति परमेश्वर की बहिरंगाशक्ति

दुर्गा अर्थात् नारी शक्ति के नाम से भी अभिहित है जो इस ब्रह्माण्ड रूपी दुर्ग की रक्षा करती है। दुर्गा शब्द का अर्थ दुर्ग भी है। यह ब्रह्माण्ड एक महान् दुर्ग के समान है, जिसमें बद्धजीव रखे गये हैं और वे तब तक इससे छुटकारा नहीं पा सकते जब तक श्रीभगवान् की दया-दृष्टि न हो। *भगवद्गीता* (४.९) में श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति ममेति सोऽर्जुन॥

''हे अर्जुन! जो मनुष्य मेरा आविर्भाव और कर्म के दिव्य स्वभाव को जानता है, वह देह को त्याग कर संसार में फिर जन्म नहीं लेता, वरन् मेरे सनातन धाम को प्राप्त हो जाता है।'' इस प्रकार केवल कृष्णभावनामृत के द्वारा भगवान् की कृपा से मुक्ति प्राप्त हो सकती है अर्थात् इस ब्रह्माण्ड रूपी दुर्ग से छुटकारा पाकर आध्यात्मिक जगत में जाया जा सकता है।

यह भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि बड़े से बड़े ग्रहों के प्रमुख अधिष्ठाता देवताओं को जो उच्च स्थान प्राप्त है, वह उनके पूर्वजन्मों में किये गये अत्यन्त मूल्यवान पुण्यकर्मों के फलस्वरूप है। इसका संकेत *कर्म-निर्मित-गतयः* शब्दों से मिलता है। उदाहरणार्थ, हम पहले यह बता चुके हैं कि चन्द्रमा जीव कहलाता है, क्योंकि वह हम जैसा जीवात्मा है, किन्तु अपने पुण्यकर्मों के कारण उसे चन्द्रदेव का पद प्रदान किया गया है। इसी प्रकार समस्त देवतागण जीवात्माएँ हैं, जिन्हें चन्द्र, पृथ्वी तथा शुक्र के अधिष्ठाता जैसे विभिन्न पदों पर महान सेवा तथा पूण्य कर्मों के कारण आरूढ़ किया गया है। इनमें से सर्वप्रमुख सूर्य के अधिष्ठाता देवता सूर्यनारायण को ही श्रीभगवान् का अवतार माना जाता है। ध्रुवलोक के प्रमुख देवता महाराज ध्रुव भी जीवात्मा हैं। इस प्रकार से आत्मा दो प्रकार के हैं—परमात्मा अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा सामान्य जीवात्मा या जीव (*नित्यो नित्यानां चेतेनश्चेतनानाम्*)। समस्त देवता ईश्वर की सेवा में संलग्न रहते हैं और केवल ऐसी व्यवस्था से ही ब्रह्माण्ड के सारे कार्य चलते हैं।

जहाँ तक इस श्लोक में वर्णित श्येनों (बाज पक्षियों) का प्रश्न है, यह माना जाता है कि ऐसे विशाल बाज हैं, जो बड़े हाथी का शिकार कर सकते हैं। वे इतनी ऊँचाई पर उड़ते हैं कि वे एक ग्रह से दूसरे ग्रह की यात्रा कर सकते हैं। वे एक ग्रह से उड़ना आरम्भ करके दूसरे तक पहुँचते हैं और

उड़ते समय अंडे देते हैं जिनसे अन्य पक्षी उत्पन्न होते हैं। जबकि अण्डे गिर रहे होते हैं। संस्कृत में ऐसे बाज पक्षियों को श्येन कहा जाता है। आधुनिक परिस्थितियों में इतने बड़े श्येन तो नहीं दिखते, किन्तु हमें ऐसे विशाल पक्षी ज्ञात हैं, जो बन्दरों को पकड़ कर नीचे गिरा देते हैं और उन्हें मार कर खा जाते है। इसी प्रकार ऐसे भी विशालकाय पक्षी ज्ञात हैं, जो हाथियों पर आक्रमण करके उन्हें मार डालते हैं और खा जाते हैं।

श्येन तथा बादलों के ये दो उदाहरण यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि वायु के द्वारा उड़ाना तथा तैरना कैसे सम्भव होता है। इसी प्रकार ग्रह भी तैरते हैं, क्योंकि भौतिक प्रकृति श्रीभगवान् के आदेशानुसार वायु को संचालित करती है। ऐसा सोचा जा सकता है कि ऐसा संयोजन गुरुत्वाकर्षण के कारण होता है, किन्तु प्रत्येक दशा में हमें यह स्वीकार करना होगा कि समस्त सिद्धान्तों के बनाने वाले श्रीभगवान् ही हैं। इन पर तथाकथित विज्ञानियों का किसी प्रकार नियंत्रण नहीं होता। विज्ञानी झूठे ही यह घोषणा कर सकते हैं कि ईश्वर नहीं हैं, किन्तु यह वास्तविकता नहीं है।

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति. ॥ ४॥

शब्दार्थ

केचन—कुछ योगी अथवा ज्योतिर्विद; एतत्—यह; ज्योतिः-अनीकम्—नक्षत्रों तथा ग्रहों का विशाल चक्र; शिशुमार-संस्थानेन—यह चक्र मानो शिशुमार (सूँस) हो; भगवतः—श्रीभगवान्; वासुदेवस्य—भगवान् वासुदेव, श्रीकृष्ण का; योग-धारणायाम्—ध्यानमग्न; अनुवर्णयन्ति—बताते हैं।

नक्षत्रों तथा ग्रहों से युक्त यह विराट यंत्र जल में शिशुमार (सूँस मछली) के स्वरूप से समानता रखने वाला है। कभी-कभी इसे वासुदेव श्रीकृष्ण का अवतार माना जाता है। वास्तव में दृश्य होने के कारण बड़े-बड़े योगी वासुदेव के इस रूप का ध्यान करते हैं।

तात्पर्य : ऐसे योगी जिनके मन भगवान् के रूप को अपने में नहीं स्थान दे पाते वे किसी अत्यन्त विराटवस्तु की यथा *विराटपुरुष* की कल्पना करते हैं। इसलिए कुछ योगी इस काल्पनिक शिशुमार के आकाश में उसी तरह तैरते हुए रूप की कल्पना करते हैं जिस तरह जल में डॅल्फिन मछली तैरती है। ये इस पर परमेश्वर के विराट रूप की भाँति ध्यान करते हैं।

यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितस्तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः; तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि

दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये; यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसङ्ख्या भवन्ति; पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः. ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; पुच्छ-अग्रे—पूँछ के सिरे पर; अवाक्शिरसः—जिसका सिर नीचे की ओर है; कुण्डली-भूत-देहस्य—जिसका शरीर कुण्डलीबद्ध है; ध्रुवः—ध्रुव लोक के ध्रुव महाराज; उपकल्पितः—स्थित है; तस्य—उसकी; लाङ्गूले—पूँछ पर; प्रजापतिः—प्रजापति; अग्निः—अग्नि; इन्द्रः—इन्द्र; धर्मः—धर्म; इति—इस प्रकार; पुच्छ-मूले—पूँछ के मूल भाग पर; धाता विधाता—धाता तथा विधाता नामक देवतागण; च—भी; कट्याम्—कटि भाग पर; सप्त-ऋषयः—सप्तर्षिगण; तस्य—उसके; दक्षिण-आवर्त-कुण्डली-भूत-शरीरस्य—जिसका शरीर दक्षिण की ओर घूमती हुई कुण्डली के समान है; यानि—जो; उदगयनानि—उत्तरी पथ को बताने वाले; दक्षिण-पार्श्वे—दाहिनी ओर; तु—लेकिन; नक्षत्राणि—नक्षत्रगण; उपकल्पयन्ति—स्थित हैं; दक्षिण-आयनानि—पुष्या से लेकर उत्तराषाढ़ा तक के १४ नक्षत्र जो उत्तरापथ को बताते हैं; तु—लेकिन; सव्ये—बाईं ओर; यथा—जिस प्रकार; शिशुमारस्य—सूँस का; कुण्डला-भोग-सन्निवेशस्य—जिसका शरीर कुण्डली सदृश प्रतीत होता है; पार्श्वयोः—पार्श्वों में; उभयोः—दोनों; अपि—ही; अवयवाः—शरीर के अंग; समसङ्ख्याः—समान संख्या के (१४); भवन्ति—हैं; पृष्ठे—पीठ पर; तु—निस्सन्देह; अजवीथी—दक्षिण पथ को बताने वाले प्रथम तीन नक्षत्र (मूला, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा); आकाश-गङ्गा—आकाशगंगा; च—भी; उदरतः—पेट पर।

यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका सिर नीचे की ओर है। इसकी पूँछ के सिरे पर ध्रुव नामक लोक स्थित है। इसकी पूँछ के मध्य भाग में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र तथा धर्म नामक देवताओं के लोक स्थित हैं और पूँछ के मूल भाग में धाता और विधाता नामक देवताओं के लोक हैं। उसके कटिप्रदेश में वसिष्ठ, अंगिरा इत्यादि सातों ऋषि हैं। कुण्डलीबद्ध शिशुमार का शरीर दाहिनी ओर मुड़ता है, जिसमें अभिजित् से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त चौदह नक्षत्र स्थित हैं। इसकी बाईं ओर पुष्य से लेकर उत्तराषाढ़ा पर्यन्त चौदह नक्षत्र हैं। इस प्रकार दोनों ओर समान संख्या में नक्षत्र होने से इसका शरीर सन्तुलित है। शिशुमार के पृष्ठ भाग में अजवीथी नामक नक्षत्रों का समूह है और उदर में आकाश-गंगा है।

पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासङ्ख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववङ्क्रिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववङ्क्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत्. ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

पुनर्वसु—पुनर्वसु नामक नक्षत्र; पुष्यौ—तथा पुष्य नक्षत्र; दक्षिण-वामयोः—दाहिने तथा बाएँ; श्रोण्योः—कटि तट; आर्द्रा—आर्द्रा नामक नक्षत्र; अश्लेषे—अश्लेषा नक्षत्र; च—भी; दक्षिण-वामयोः—दाएँ तथा बाएँ; पश्चिमयोः—पीछे; पादयोः—पैर; अभिजित्-उत्तराषाढे—अभिजित् तथा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र; दक्षिण-वामयोः—दाएँ तथा बाएँ; नासिकयोः—नथुने; यथा-सङ्ख्यम्—क्रमानुसार; श्रवण-पूर्वाषाढे—श्रवणा तथा पूर्वाषाढ़ा नामक नक्षत्र; दक्षिण-वामयोः—दाईं तथा बाईं ओर; लोचनयोः—आँखें; धनिष्ठा मूलम् च—तथा धनिष्ठा एवं मूला नक्षत्र; दक्षिण-वामयोः—दाएँ बाएँ; कर्णयोः—कान; मघा-आदीनि—मघा आदि नक्षत्र; अष्ट नक्षत्राणि—आठ नक्षत्र; दक्षिण-आयनानि—दक्षिण पथ को बताने वाले; वाम-पार्श्व—बाईं ओर; वङ्क्रिषु—पसलियों पर; युञ्जीत—रख सकते हैं; तथा एव—इसी प्रकार; मृग-शीर्षा-आदीनि—मृगशीर्ष आदि;

उदगयनानि—उत्तरी पथ को बताते हुए; दक्षिण-पार्श्व-वङ्क्रिषु—दाहिनी ओर; प्रातिलोम्येन—विपरीत क्रम में; प्रयुञ्जीत—रख सकते हैं; शतभिषा—शतभिषा; ज्येष्ठे—ज्येष्ठा; स्कन्धयो:—दोनों कन्धों पर; दक्षिण-वामयो:—दाएँ तथा बाएँ; न्यसेत्—रखना चाहिए।

शिशुमार चक्र के दाहिने तथा बाएँ कटि तटों पर पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र हैं। इसके दाएँ तथा बाएँ पैरों पर आर्द्रा एवं अश्लेषा; इसके दाएँ तथा बाएँ नथुनों पर क्रमश: अभिजित् तथा उत्तराषाढ़ा; इसके दाएँ तथा बाएँ नेत्रों पर श्रवणा तथा पूर्वषाढ़ा और इसके दाएँ तथा बाएँ कानों पर धनिष्ठा तथा मूला स्थित हैं। मघा से अनुराधा तक दक्षिणायन् के आठ नक्षत्र बाईं पसलियों पर और उत्तरायण के मृगशीर्ष से पूर्वभाद्र पर्यन्त आठ नक्षत्र दाईं ओर की पसलियों पर स्थित हैं। शतभिषा तथा ज्येष्ठा ये दो नक्षत्र क्रमश: दाहिने और बाएँ कन्धों पर स्थित हैं।

उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गारक: शनैश्चर उपस्थे बृहस्पति: ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुध: प्राणापानयो राहुर्गले केतव: सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणा:. ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

उत्तरा-हनौ—ऊपरी जबड़े पर; अगस्ति:—अगस्ति नामक नक्षत्र; अधरा-हनौ—निचले जबड़े पर; यम:—यमराज; मुखेषु—मुख पर; च—भी; अङ्गारक:—मंगल; शनैश्चर:—शनि; उपस्थे—लिंगप्रदेश में; बृहस्पति:—बृहस्पति; ककुदि—गर्दन के पीछले भाग पर; वक्षसि—वक्ष (छाती) पर; आदित्य:—सूर्य; हृदये—हृदय में; नारायण:—भगवान् नारायण; मनसि—मन में; चन्द्र:—चन्द्रमा; नाभ्याम्—नाभि में; उशना—शुक्र; स्तनयो:—दोनों स्तनों पर; अश्विनौ—अश्विनद्वय (अश्विनी कुमार); बुध:—बुध; प्राणापानयो:—प्राण तथा अपान नामक श्वासों में; राहु:—राहु ग्रह; गले—गर्दन पर; केतव:—केतुगण; सर्व-अङ्गेषु—सम्पूर्ण शरीर पर; रोमसु—रोओं में; सर्वे—सभी; तारा-गणा:—असंख्य तारे।

शिशुमार की ऊपरी ठोड़ी पर अगस्ति, निचली ठोड़ी पर यमराज, मुँह में मंगल, उपस्थ में शनि, गर्दन (ककुद) पर बृहस्पति, छाती पर सूर्य, हृदय के छोर में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र तथा स्तनों में अश्विनी कुमार स्थित हैं। प्राण और अपान नामक प्राण वायु में बुध, गले में राहु तथा समस्त शरीर पर केतु और रोमों में समस्त तारागण स्थित हैं।

एतदु हैव भगवतो विष्णो: सर्वदेवतामयं रूपमहरह: सन्ध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति. ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; उ ह—निस्सन्देह; एव—ही; भगवत:—श्रीभगवान्; विष्णो:—विष्णु का; सर्व-देवता-मयम्—समस्त देवताओं से युक्त; रूपम्—स्वरूप; अह:-अह:—सदैव; सन्ध्यायाम्—प्रात:, दोपहर तथा शाम को; प्रयत:—ध्यान धरते हुए; वाग्यत:—शब्दों (वाणी) पर नियंत्रण करते हुए; निरीक्षमाण:—निरीक्षण करते हुए; उपतिष्ठेत—उपासना करनी चाहिए; नम:—नमस्कार; ज्योति:-लोकाय—समस्त ग्रहों के आधारस्वरूप को; कालायनाय—परम काल के रूप में; अनिमिषाम्—देवताओं के; पतये—स्वामी को; महा-पुरुषाय—परम-पुरुष को; अभिधीमहि—चिन्तन करें; इति—इस प्रकार।

हे राजन्, इस प्रकार से वर्णित शिशुमार के शरीर को भगवान् श्रीविष्णु का बाह्य रूप मानना चाहिए। प्रत्येक प्रातः, दोपहर तथा सायंकाल शिशुमार चक्र के रूप में भगवान् का दर्शन मौन होकर करना चाहिए और इस मंत्र से उपासना करनी चाहिए—''हे काल रूप धारण करने वाले भगवान्, हे विभिन्न कक्ष्याओं में घूमने वाले ग्रहों के आश्रय, हे समस्त देवों के स्वामी, हे परम पुरुष, मैं आपको नमस्कार करता हूँ और आपका ध्यान धरता हूँ।''

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं
पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं
नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ग्रह-ऋक्ष-तारा-मयम्—समस्त नक्षत्रों तथा ग्रहों से युक्त; आधिदैविकम्—समस्त देवताओं के अधिपति; पाप-अपहम्—पापों का नाश करने वाले; मन्त्र-कृताम्—जो उपर्युक्त मंत्र का जप करते हैं; त्रि-कालम्—तीनों काल को; नमस्यतः—नमस्कार; स्मरतः—ध्यान करते हैं; वा—अथवा; त्रि-कालम्—तीन बार; नश्येत—नाश करता है; तत्-काल-जम्—उस समय उत्पन्न; आशु—शीघ्रता से; पापम्—समस्त पापों को।

शिशुमार चक्र रूपी परमेश्वर विष्णु का शरीर समस्त देवताओं, नक्षत्रों तथा ग्रहों का आश्रय है। जो व्यक्ति परम पुरुष की आराधना करने हेतु नित्य तीन बार प्रातः, दोपहर तथा सायंकाल इस मन्त्र का जप करता है, वह समस्त पापों के फल से अवश्य ही मुक्त हो जाता है। यदि कोई इस रूप में उनको केवल नमस्कार करे या इसे दिन में तीन बार स्मरण करे तो उसके हाल में किए हुए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

तात्पर्य : ब्रह्माण्ड के ग्रहों के सम्पूर्ण विवरण का सार-समाहार करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि जो कोई इस *विराट रूप या विश्वरूप* का ध्यान करने में समर्थ है और दिन में उनका तीन बार स्मरण करता है, वह समस्त पाप-फलों से मुक्त हो जाता है। उनका अनुमान है कि ध्रुवलोक सूर्य से ३८,००,००० योजन ऊपर स्थित है। ध्रुवलोक से भी १,००,००,००० योजन ऊपर महर्लोक और इससे २,००,००,००० योजन ऊपर जनलोक, फिर इससे ८,००,००,००० योजन ऊपर तपोलोक और इससे भी १२,००,००,००० योजन ऊपर सत्यलोक स्थित है। इस प्रकार सूर्य से सत्यलोक की दूरी २३,३८,००,००० योजन अथवा १,८७,०४,००,००० मील है। सत्यलोक से २,६२,००,००० योजन ऊपर वैकुण्ठलोक प्रारम्भ होते हैं। *विष्णु पुराण* के अनुसार सूर्य से ब्रह्माण्ड का

आवरण २६,००,००,००० योजन (२,०८,००,००,००० मील) दूर है। सूर्य से पृथ्वी तक की दूरी १,००,००० योजन है और पृथ्वी के नीचे ७०,००० योजन दूरी पर सात निम्नलोक हैं, जिनके नाम हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल। इन लोकों से ३०,००० योजन नीचे गर्भोदक सागर में शेषनाग शयन कर रहे हैं। यह सागर २४,९८,००,००० योजन गहरा है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का समग्र व्यास लगभग ५०,००,००,००० योजन या ४,००,००,००,००० मील है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत शिशुमार ग्रहमण्डल'' नामक तेईसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।